गच्छाधिपति

पू.आ.श्री कैलाससागरसूरीश्वरजी म.सा.

जीवन-यात्राः एक परिचय

गच्छाधिपति

पू. आ. श्री कैलाससागरसूरीश्वरजी म. सा.

जीवन-यात्रा : एक परिचय

पू. आ. श्री पद्मसागरसूरीश्वरजी म. सा.

●

लेखक :

मुनि मित्रानन्दसागर

●

अनुवादक :

मुनि विमलसागर

●

प्रकाशक :
श्री महावीर जैन आराधना केन्द्र
कोबा, जिला–गांधीनगर,
गुजरात

●

द्वितीय संस्करण :
जुलाई, 1985

●

प्रतियां : 1000

●

मूल्य : रु. 2/50

●

आवरण पृष्ठ :
चिम प्रिंटर्स, अहमदाबाद

●

मुद्रक : शिरीष बापालाल भट्ट
निधि प्रिंटर्स, न्यू डालिया बिल्डींग,
एलिसब्रिज, अहमदाबाद–6.

●

पू. आचार्यश्री के अंतिम उद्‌गार

"मुझे जीने का कोई मोह नहीं और मरने का कोई डर नहीं है, मरा तो श्री सीमंधरस्वामी परमात्मा के पास जाना चाहता हूँ और जिंदा रहा तो सोहम्-सोहम् करुंगा।"

पूज्य योगनिष्ट आचार्य देव
श्रीमद् बुद्धिसागरसूरीश्वरजी
म. सा. के वे शब्द, जिन्हें
पूज्य कैलाससागरसूरीश्वरजी
म. सा. बार-बार दोहराया
करते थे–

– दासोहं सर्व साधूनाम् ।
'मैं सभी साधूओं का दास हूँ ।'

●

Acharya Padmasagarsuri

JAIN MANDIR,
Ashram Road,
Usmanpura,
AHMEDABAD-380014

25-6-85

-: संदेश :-

संयम आराधना की मंगल मूर्ति समान चारित्र चूड़ामणी पूज्यपाद आचार्य देव-श्री कैलास सागर सूरीश्वरजी म. सा. के विषय में संयमी जीवन के लिये जितना लिखा जाये उतना कम है।

शब्दों से उनके जीवन को तोलना बहुत ही कठिन है।

फिर भी उनके जीवन से अनेक आत्माओं को प्रेरणा प्राप्त हो सके - इसी भावना से उन की संक्षिप्त जीवनी प्रकाशित की गई है।

मुझे विश्वास है कि यह पुस्तिका अनेक व्यक्तियों के जीवन को ज्योतिर्मय बनाने में सहायक बनेगी।

पद्मसागर

अनुवादक की ओर से

मेरे लिए अत्यंत प्रसन्नता की बात है कि मेरे परम श्रद्धेय पूज्य गच्छाधिपति आचार्य श्री कैलाससागरसूरीश्वरजी म. सा. का एक संक्षिप्त जीवन-परिचय लिखने का अमूल्य अवसर मुझे प्राप्त हुआ। आज पूज्य आचार्य श्री अपने बीच नहीं है। वे यदि होते तो इस पुस्तिका को लिखने की कोई आवश्यकता नहीं होती, क्योंकि वे सभी गुण, जो इस पुस्तिका में समाए नहीं जा सकते, पूज्य आचार्यश्री में हर समय विद्यमान थे। उन गुणों का परिचय आचार्यश्री के परिचय से स्वतः ही मिल जाता।

उन महापुरुष के आत्मिक सौन्दर्य और गुणों की सुवास का परिचय देने की क्षमता तो इस क्षुद्र लेखनी में नहीं है, परन्तु सिर्फ लेखक के उद्गारों को अनुवादित कर, उन्हें शब्दों में संवारने का यत्किंचित् प्रयास मात्र मैंने किया है। यह एक मेरा श्रद्धा-पुष्प है पूज्य आचार्यश्री के चरणों में, जिसे चढ़ाते हुए मैं स्वयं को कृत-कृत्य समझता हूँ।

इस अवसर पर मैं पूज्य गच्छाधिपति आचार्यश्री के साथ-साथ मेरे परम-उपकारी पूज्य गुरुदेव आचार्यश्री पद्मसागरसूरीश्वरजी म. सा. का भी विशेष ऋणी हूँ, क्योंकि प्रस्तुत अनुवाद उन्हीं के असीम आशीर्वाद का प्रतिफल है। बस, स्वीकार हो-यह अर्घ्य-यही स्वर्गीय आचार्यश्री से प्रार्थना है।

— विमलसागर

अगणित उपकारों की स्मृति में

पूज्य आचार्यश्री कैलाससागरसूरीश्वरजी म. सा. के

पावन कर-कमलों में

सविनय

सादर

समर्पित

— मित्रानन्दसागर

आर्थिक सौजन्य :

वीर चेरिटेबल ट्रस्ट,
अहमदाबाद.

●

गच्छाधिपति

पू. आ. श्री कैलाससागरसूरीश्वरजी म. सा.

जीवन-यात्रा : एक परिचय

●

जन्म

कागज के फूलों में सौन्दर्य हो सकता है, पर सुगन्ध नहीं हो सकती। उनका सौन्दर्य हमारा दिल बहला सकता है, पर हमें सुगन्ध नहीं दे सकता। पूज्य गच्छाधिपति आचार्य श्री कैलाससागरसूरीश्वरजी म. सा. भी इस संसार के उपवन में एक फूल थे, पर उनकी अपनी विशेषता थी। उनमें आत्मिक सौन्दर्य भी था और गुणों की सुवास भी। उनके आत्मिक सौन्दर्य और गुणों की सुगन्ध ने हजारों श्रद्धालुओं के जीवन को सुवासित किया, उन्हें महकाया। आचार्य श्री जहां भी गए, उनके गुणों की सुवास और निर्मल चारित्र ने लोगों को प्रभावित किया।

पूज्य गच्छाधिपति आचार्य श्री कैलाससागरसूरीश्वरजी म. सा. का जन्म वि. सं. १९६०, मार्गशीर्ष वदि ६ दि. १९-१२-१९१३ शुक्रवार के शुभदिन पंजाब प्रान्त के लुधियाना जिले में स्थित जगरावाँ गाँव में हुआ था। आपके पिता का नाम श्रीरामकृष्णदासजी तथा माता का नाम रामरखीदेवी था। आपका नाम काशीराम रखा गया। धर्म से आप स्थानकवासी जैन थे।

कहा जाता है कि काशीराम की जन्म कुंडली निकालने वाले एक विद्वान ज्योतिषी ने उनके पिता से कहा था कि आपका पुत्र आगे चलकर सम्राट बने, ऐसे उच्च ग्रहयोग उसकी जन्म कुंडली में है। जो कहा था वही हुआ। काशीराम आगे चलकर सम्राट नहीं, बल्कि महान् धर्म सम्राट बने।

बाल्यकाल एवं शिक्षा

बालक काशीराम की परवरिश जैन धर्म के आदर्श सुसंस्कारों के अनुरूप हुई। दो भाईयों और चार बहनों से हरे-भरे परिवार में जन्में काशीराम का व्यक्तित्व बाल्यकाल से ही अत्यंत प्रभावशाली था। वे पाठशाला और कोलेज में हमेशा प्रथम श्रेणि से ही उत्तीर्ण हुए। प्राथमिक शिक्षा स्थानिक पाठशाला में ग्रहण कर उच्च शिक्षण के लिए मोमानगर की दयानंद मथुरानंद कोलेज में भर्ती हुए और वहां से इन्टर पास करने के बाद प्रख्यात लाहौर युनिवर्सिटी की सनातन धर्म कोलेज से बी. ए. की परीक्षा में उत्तीर्ण होकर ओनर्स बने।

बाल्यकालसे ही अत्यंत विनम्र और मृदुभाषी होने के कारण शिक्षण-जगत में काशीराम सबके प्रिय बन गए। आपके शिक्षक भी आपको सम्मान की दृष्टि से देखते थे। बी. ए. की परीक्षा में उत्तीर्ण होने के बाद सनातन धर्म कोलेज में प्रोफेसर बनने का प्रस्ताव भी काशीराम के सामने आया, परन्तु उन्होंने वह कार्य अपने योग्य न समझकर उसे नम्रता से अस्वीकार कर दिया।

बंधन की बेड़ी

काशीराम के माता-पिता अत्यंत धार्मिक एवं सुसंस्कारी होने के कारण उनके गुणों का प्रभाव काशीराम पर भी पड़ा। शैशव से ही माता ने उनमें सुसंस्कारों का सिंचन

किया था, फलस्वरूप काशीराम शुरू से ही धार्मिक एवं सुसंस्कारी थे। वे अपने माता-पिता, गुरुजनों एवं बड़ों के प्रति अत्यंत आदर रखते थे। विनम्रता और मृदुभाषिता जैसे गुण तो उन्हें अपने माता-पिता की ओर से विरासत में मिले थे। काशीराम जब पाठशाला में थे, तभी उन्हें स्थानकवासी मुनि श्री छोटेलालजी म. का परिचय हुआ था। शुरू से ही आपको आत्मसंशोधन की जिज्ञासा थी, जो मुनिश्री के परिचय में आकर और ज्यादा सुदृढ़ बनी, इतना ही नहीं, आगे चलकर मुनि श्री के पास दीक्षित बनने की भावना भी उनमें जाग्रत हुई। माता-पिता को इस बात का पता चलते ही तत्काल उन्होंने काशीराम को सांसारिक संबंधों में बांधने का निर्णय ले लिया और रामपुरा कूल निवासी शांतादेवी नामक एक सुन्दर-सुशील कन्या के साथ काशीराम का विवाह कर दिया। काशीराम प्रारम्भ से ही इसके लिए उत्सुक एवं इच्छुक नहीं थे, परन्तु माता-पिता के अत्यधिक आग्रह के न्यानिर मात्र उनको सन्तोष देने के लिए उन्हें विवाह करने का स्वीकार करना पड़ा।

पुस्तक पठन की अभिरुचि

इस अरसे में काशीराम का आना-जाना मुनिश्री छोटेलालजी म. के पास होता रहा। वे मुनिश्री के पास से नियमित रूप से कोई धार्मिक पुस्तक अपने घर लाते और एक दिन में ही पूरी तरह पढ़कर उसे दूसरे दिन सुरक्षित लौटा देते।

एक दिन मुनिश्री ने सहज में ही उनसे पूछा 'काशीराम ! तुम मात्र पुस्तक ले जाकर पुनः ले आते हो या उसे पढ़ते भी हो।' काशीराम ने नम्रता पूर्वक कहा 'आप पुस्तक से कोई भी प्रश्न पूछ लीजिए। मैं पढ़ता हूँ या नहीं, यह स्वयं सिद्ध हो जाएगा।' यह जवाब सुनकर मुनिश्री को बहुत प्रसन्नता हुई। काशीराम की याद शक्ति इतनी अपूर्व थी कि वे जिस किसी पुस्तक को एक या दो बार पढ़ते वह उन्हें पूरी तरह याद रह जाती।

जीवन परिवर्तन करनेवाली वह पुस्तक

काशीराम जन्म से ही स्थानकवासी मान्यता के होने के कारण पहले से ही मूर्तिपूजा के कट्टर विरोधी थे। कई बार वे मूर्तिपूजक सम्प्रदाय के लोगों के साथ चर्चा में भी उतर जाते थे। मूर्ति को पत्थर कहकर स्वयं के मन का विरोध भी वे कई बार प्रकट करते थे।

प्रतिदिन की भांति एक दिन काशीराम एक पुस्तक अपने घर लाए। संयोग वश उस दिन मुनिश्री के ध्यान में यह नहीं रहा कि काशीराम कौनसी पुस्तक अपने घर ले गया है। वह पुस्तक मूर्तिपूजा के सन्दर्भ में थी। पुस्तक में जगह-जगह शास्त्रों के सन्दर्भ, आगमों के अवतरण देकर यह सिद्ध किया गया था कि मूर्तिपूजा शास्त्र सम्मत है। इतना ही नहीं, स्थानकवासी सम्प्रदाय को मान्य ऐसे ग्रन्थों से भी कई उदाहरण देकर यह प्रमाणित किया गया था कि मूर्तिपूजा करनी चाहिए।

मूर्तिपूजा को प्रमाणित करती इस पुस्तक को काशीराम ने तीन दिन तक अपने घर में रखी। जिससे मुनिश्री ने काशीराम से पूछा कि 'क्या इन दिनों तुम्हें पुस्तक पढ़ने का समय नहीं मिलता ?'

किसी भी पुस्तक को एक ही दिन में पढ़कर लौटा देने वाला व्यक्ति जब तीन दिन तक एक पुस्तक को पढ़कर पूरा न कर सके तो किसी को भी आश्चर्य होना स्वाभाविक है। परन्तु वास्तविकता कुछ और ही थी। उस पुस्तक को तो काशीराम ने एक ही दिन में पढ़ ली थी, किन्तु मूर्तिपूजा शास्त्रसिद्ध सत्य है—यह जानकर वे चौंक उठे, उन्हें आश्चर्य हुआ। किसी भी हालत में उनका मन यह मानने को तैयार नहीं था। उन्होंने उस पुस्तक को लगातार सात बार पढ़ी, पर उन्हें मनः संतोष नहीं हुआ।

अन्ततः काशीराम ने इस सम्बन्ध में मुनिश्री से ही पूछा। मुनिश्री ने पहले तो कुछ तर्क दिये, कुछ उलटा-सीधा समझाने की कोशिश की, पर काशीराम के तर्क और प्रश्नों के सामने मुनिश्री की एक न चली। आखिर उन्होंने यह देखकर कि इस पढ़े लिखे शिक्षित युवक को बेवकूफ बनाना सम्भव न होगा, काशीराम से कहा कि 'हां! मूर्तिपूजा शास्त्र सम्मत ही है।' मुनिश्री की बात सुनते ही काशीराम के हृदय को एक गहरी चोट सी लगी, उन्होंने मुनिश्री से तुरन्त दूसरा प्रश्न किया 'तो फिर आप मूर्तिपूजा का खंडन क्यो करते हैं ? किसलिए सत्य को स्वीकार नहीं करते ?'

मुनिश्री ने धीरे से कहा 'मैं तो अब वृद्ध हो चुका हूँ। एक-दो वर्ष मुश्किल से जी सकूंगा। मूर्तिपूजा विरोधी मान्यता का प्रतिकार करना अब मेरे लिए संभव नहीं है। ऐसा करने से हमारे समाज में मेरे प्रति द्वेष उत्पन्न होगा। मेरी आत्मिक शांति नष्ट हो जाएगी। इस ढलते जीवन में अब बेकार अशांति उत्पन्न कर मैं क्या करूं? मैं चाहता हूँ कि मेरे ये अंतिम दिन शांति से गुजरें, इसीलिए मैं अपने इसी समाज की मान्यताओं के अनुसार जीवन पूर्ण कर रहा हूँ।'

सत्यं शरणं गच्छामि

मुनिश्री की बात सुनकर काशीराम दंग रह गए। उसी दिन उन्हें अपनी अज्ञान मान्यता का आभास हुआ। वे मन ही मन स्वयं को धिक्कार रहे थे। क्यों कि उन्होंने अपनी अज्ञानावस्था में मूर्ति को पत्थर कहकर जिनेश्वर परमात्मा की घोर आशातना की थी। उन्हें लगा कि वास्तव में मैं आज तक मूर्ख बना रहा, आज इस पुस्तक ने मुझे सत्य के दर्शन कराए हैं। उन्होंने उसी वक्त प्रतिज्ञा ली कि आज से वे कभी मूर्तिपूजा का विरोध नहीं करेंगे। सत्य के चाहक को सम्प्रदाय के बंधन कभी अवरोध रूप नहीं बन सकते और सत्य के उपासक इस प्रकार के बंधनों को गिनते भी नहीं हैं। प्रारम्भ से ही दांभिक जीवन के प्रति काशीराम को नफरत थी। उन्हें दम्भ और कपट तनिक भी पसन्द नहीं था। उन्होंने मूर्ति-

पूजा के सन्दर्भ में मुनिश्री के साथ बहुत देर तक विचार-विमर्श किया और अन्ततः मुनिश्री को एक बात के लिए तो मना ही लिया कि 'कम से कम आप मूर्तिपूजा का विरोध तो कभी न करें।' मूर्तिपूजा के सम्बन्ध में सत्य एवं नवीन जानकारी मिल जाने के बाद काशीराम के मन में उस पुस्तक के लेखक को प्रत्यक्ष रूप से मिलकर अपनी जिज्ञासा को उनके समक्ष प्रकट करने की इच्छा जाग्रत हुई।

मूर्तिपूजा संबंधी उस पुस्तक के लेखक थे बीती सदी के अजोड़ विद्वान और योगनिष्ठ आचार्यश्री बुद्धिसागरसूरीश्वरजी म. सा., जिन्होंने जैन तत्वज्ञान-आत्मज्ञान-दर्शन आदि अनेक विषयों पर स्वतंत्र रूप से लगभग 125 अमर ग्रन्थों का विराट सर्जन किया।

गुजरात की यात्रा पर

उन अपूर्व प्रतिभाशाली, योगनिष्ठ आचार्यश्री को मिलने काशीराम गुजरात की यात्रा पर रवाना हुए पर, अफसोस कि गुजरात आने के बाद उन्हें जानने को मिला कि बहुत समय पहले ही पू. आचार्य श्री बुद्धिसागरसूरीश्वरजी म. सा. का स्वर्गवास हो गया था। अतः काशीराम पूज्य योगनिष्ठ आचार्यश्री के शिष्य परम पूज्य आचार्यश्री कीर्तिसागरसूरीश्वरजी म. सा. से मिले। पू. आचार्यश्रीने मूर्तिपूजा सम्बन्धी काशीराम की समस्त जिज्ञासाओं का शांति पूर्वक समाधान किया। उसके बाद इन्हीं पूज्य आचार्यश्री की प्रेरणा से काशीराम शत्रुंजय (पालीताणा) की यात्रा के

लिए गए। सत्य को जानने से पहले शत्रुंजय की घोर टीका करने वाले काशीराम शत्रुंजय की छाया में श्री आदिनाथ भगवान के दर्शन कर पावन बने।

आत्मकल्याण के पथ पर

किशोरावस्था से ही काशीराम का मन संसार से एकदम अलिप्त जैसा ही था और उन्हें आत्मकल्याण के पथ पर आगे बढ़ने की तीव्र इच्छा एवं अभिलाषा थी। वे संसार के बंधनों में जकड़े रहना स्वयं के लिए ठीक नहीं समझते थे। गृहवास के दौरान भी वे आत्मचिन्तन के लिए बहुत सा समय निकाल लेते थे। शत्रुंजय की यात्रा से लौटने के बाद उन्होंने तारंगा तीर्थ पर प. पू. आचार्यश्री कीर्तिसागरसूरीश्वरजी म. सा. के पुनः दर्शन किये और इस नश्वर संसार को त्याग कर दीक्षा ग्रहण करने की अपनी भावना उनके समक्ष दर्शायी। माता-पिता और परिवारजन तो उन्हें दीक्षा देने के लिए किसी भी हालत में तैयार नहीं थे। लेकिन इधर काशीराम स्वयं संसार में रहने को भी बिलकुल तैयार नहीं थे।

प. पू. आचार्यश्री कीर्तिसागरसूरीश्वरजी म. सा. ने माता-पिता की बिना आज्ञा के दीक्षा न देने की अपनी लाचारी काशीराम के सामने प्रकट की, परन्तु काशीराम हरगिज मानने को तैयार नहीं हुए। उन्होंने तो आचार्यश्री को यहाँ तक भी कह दिया कि 'यदि आपने दीक्षा न दी तो मैं स्वतः ही साधु-वस्त्र धारण कर आपके चरणों में बैठ जाऊँगा।'

काशीराम की प्रबल वैराग्य-भावना देखकर आचार्य श्रीने उन्हें अपने शिष्य मुनिराजश्री जितेन्द्रसागरजी म. सा. के पास दीक्षा लेने का सुझाव दिया। आचार्यश्री के सुझाव के अनुसार काशीराम ने पूज्य तपस्वी मुनिरत्न श्री जितेन्द्र-सागरजी म. सा. के चरणों में अपना जीवन समर्पित कर दीक्षा ग्रहण की। दीक्षा के पश्चात् काशीराम का नाम 'मुनिश्री आनंदसागरजी' रखा गया।

संयम यात्रा में एक अवरोध

काशीराम ने अपने परिवारजनों को सूचित किये बिना दीक्षा ग्रहण की थी, फलस्वरूप काशीराम के दीक्षित बन जाने के समाचार सुनकर उनके परिवारजन गुजरात आए और उन्हें तुरन्त घर लौटने का अनुरोध किया। परन्तु मुनिश्री आनंदसागरजी इसके लिए बिलकुल तैयार नहीं थे। यह देखकर उनके परिवारजन उन्हें उनकी इच्छा के विरुद्ध जबरदस्ती पूर्वक घर ले गए।

घर जाने के बाद काशीराम ने अपने परिवारजनों को बहुत समझाया। वे हर समय घर में ही रहते। प्रतिदिन पौषध कर स्वाध्याय-चिन्तन-मनन में ही समय व्यतीत करते। पुनः गृहवास के दौरान उनका जीवन संसार में भी साधु की तरह था। वे संसार से बिलकुल अलिप्त थे। काशीराम की प्रबल वैराग्य-भावना, उनकी दिनचर्या एवं संसार से एकदम अलिप्त जीवन देखकर परिवारजनों को भी झुकना पड़ा। उन्होंने काशीराम को दीक्षा ग्रहण करने की

सहर्ष अनुमति प्रदान की। अन्ततः सं. १९९४, पोस वदि १० के परम-पावन दिन अहमदाबाद की पवित्र वसुंधरा पर परम पूज्य आचार्य श्री कीर्तिसागरसूरीश्वरजी म. सा. के पास काशीराम ने पुनः दीक्षा ग्रहण की और पूज्य तपस्वी मुनिरत्न श्री जितेन्द्रसागरजी म. सा. के शिष्य बने। पुनः दीक्षा के बाद उनका नाम 'मुनिश्री कैलाससागरजी म.' रखा गया।

सुशील साधु

यहां से उनकी आत्मविकास और उज्ज्वल जीवन की प्रक्रिया विस्तृत और सुन्दर रूप से आगे बढ़ी। स्वयं की अपूर्व बौद्धिक प्रतिभा के कारण स्वल्प समयावधि में ही पूज्य मुनि श्री कैलाससागरजी म. ने आगमिक-दार्शनिक-साहित्यिक आदि ग्रन्थों का पूरी निष्ठा के साथ गहराई पूर्वक अध्ययन किया। अध्ययन में उनकी अपूर्व लगन और तन्मयता के कारण थोड़े ही वर्षों में मुनिश्री की गणना जैन समाज के विद्वान साधुओं में होने लगी। जिनके पास भी मुनिश्री अध्ययन करते उनके मन और स्नेह को वे तुरन्त ही जीत लेते। कहीं भी कोई नया ज्ञान-प्राप्त करने के लिए मीलों तक का विहार करने में भी वे हिचकिचाते नहीं थे। तलस्पर्शी अध्ययन के साथ-साथ मुनिश्री की गुरु सेवा भी अपूर्व थी। ज्ञान का अजीर्ण उनमें कभी देखने को नहीं मिला। गुरुदेव के प्रति अपूर्व समर्पण भाव के कारण गुरुदेव श्री की असीम कृपा हर समय उनके साथ थी। वे जो भी कार्य करते, गुरु आज्ञा को ही उसमें

प्रमुखता देते। मुनिश्री की योग्यता को देखते हुए संवत २००४, माघ सुद १३ के शुभदिन पूना में पू. आचार्य श्री कीर्तिसागरसूरीश्वरजी म. सा. ने उन्हें गणिपद प्रदान किया। उसके बाद क्रमशः वि. सं. २००५, मार्गशीर्ष सुद १० को बम्बई में पंन्यास पद, वि. सं. २०११, माघ सुद ५ को साणंद में उपाध्याय पद तथा संवत २०२२, माघ वद ५ को साणंद में ही आचार्य पद से उन्हें विभूषित किया गया। आचार्य पदवी के बाद आप पूज्य आचार्य श्री कैलाससागरसूरीश्वरजी म. सा. के नाम से जगत में प्रख्यात हुए।

समय की गति के साथ-साथ आचार्यश्री की उन्नति भी निरंतर गतिशील थी। संवत् २०२६ में समुदाय का समग्र भार आचार्यश्री पर आया और वे गच्छनायक बने। वि.सं. २०३९, जेठ सुद ११ के शुभ दिन महुड़ी तीर्थ की पावन वसुंधरा पर विशाल जन समुदाय की उपस्थिति में सागर समुदाय की उच्च प्रणालिका के अनुसार आचार्यश्री को विधिवत् 'गच्छाधिपति' पद से विभूषित किया गया।

योग मार्ग के साधक

पूज्य आचार्यश्री को आत्मध्यान में बैठना अत्यंत प्रिय था। आपश्री हमेशा गुफाओं में, नदी के किनारे, खेत में, जिनमंदिर आदि में आत्मध्यान में बैठ जाते और घण्टों तक आत्मा की मस्ती में तल्लीन हो जाते थे।

स्वाद विजेता गुरुदेव

संयम जीवन के प्रथम चार दशक तक तो आचार्य श्री प्रतिदिन 'एकासणे' का तप ही करते थे। बाद में शारीरिक प्रतिकूलताओं के कारण समुदाय के साधुओं के अत्यंत आग्रह वश उन्हें बड़े दुःख के साथ 'एकासणे' का तप छोड़ना पड़ा। आचार्यश्री हमेशा मात्र दो द्रव्यों से ही आहार कर शरीर का निर्वाह करते और चार 'विगई' का नियमित त्याग रखते थे। दीक्षा ग्रहण के थोड़े समय पश्चात् ही आपने मिठाई का भी त्याग कर दिया था। उस दिन से जीवन पर्यंत आपने कभी मिठाई नहीं चखी।

एकासणे का तप छोड़ने के बाद भी आप दिन में कई घण्टों तक अभिग्रह पच्चक्खाण द्वारा चारों आहार का त्याग रखते थे। उन्होंने अपने सम्पूर्ण जीवन में चाय का कभी स्वाद नहीं चखा था। हमारे पूछने पर वे कहा करते थे कि–'मुझे यह पता नहीं, कि चाय का स्वाद कैसा होता है।'

शिल्प शास्त्र के प्रकांड विद्वान

शिल्पशास्त्र के प्रकांड ज्ञाता होने के कारण जिनमूर्ति और जिनमंदिर के सम्बंध में मार्गदर्शन के लिए हजारों लोग आचार्यश्री के पास आया करते थे। इतना ही नहीं, कई ख्यातनाम आचार्य भगवन्त भी इस विषय में पूज्यश्री से सलाह लेते थे। जिनशासन के हर छोटे–बड़े कार्य के लिए आचार्यश्री हमेशा तत्पर एवं समर्पित रहते थे।

लोकप्रियता

महान विद्वान और ऊँचे पद पर प्रतिष्ठित होने के बावजूद भी कभी आपमें अभिमान की सामान्य झलक भी देखने को नहीं मिली। इसी निरभिमानता के महान गुण की बदौलत आप अधिक लोकप्रिय बने। आचार्यश्री का सहज एवं सरल व्यक्तित्व श्रद्धालुओं के आकर्षण का प्रमुख केन्द्र था। नन्हें-मुन्हें बालकों में मिलने वाली सरलता आचार्यश्री में हमेशा सहजता से देखी जा सकती थी। आपकी अद्भुत सरलता के कारण ही आपके पास बालक-युवान-वृद्ध सभी निःसंकोच आकर कुछ न कुछ प्रेरणा प्राप्त कर जाते थे। आप बालक के साथ भी वैसा ही व्यवहार करते थे जैसा किसी युवान या वृद्ध के साथ।

महान तीर्थ के उपदेशक

महेसाणा की पावन वसुंधरा पर श्री सीमंधरस्वामी भगवान के विशाल जिनमंदिर एवं विराट जिनमूर्ति की स्थापना में आचार्यश्री का ही उपदेश था। जिनशासन की गरिमा और कीर्ति को दूर-दूर तक फैलाने वाले इस विशाल जिनमंदिर के उपदेशक के रूप में आचार्यश्री हमेशा अमर रहेंगे। पद्मासन स्थित श्री सीमंधरस्वामी भगवान की मूर्ति ऊँचाई की दृष्टि से आज समग्र भारत में प्रथम है। इस तीर्थ के दर्शनार्थ आ रहे हजारों श्रद्धालु श्री सीमंधरस्वामी परमात्मा के दर्शन कर आत्मतृप्ति का अनुभव करते हैं।

निःस्पृही और अप्रमत्त साधक

जिनशासन में अपूर्व लोकप्रियता और ऊँची प्रतिष्ठा पाने के बावजुद भी आचार्यश्री ने अपने स्वार्थ के लिए कभी उसका उपयोग नहीं किया। इतना सारा मान-सम्मान होते हुए भी आपका जीवन अत्यंत सादगी पूर्ण था। किसी भी प्रकार की आकांक्षाओं, अपेक्षाओं और शिकायतों से आप हमेशा परे थे। उग्रविहार और शासन की अनेक प्रवृत्तिओं में व्यस्त होते हुए भी आप अपने आत्मचिन्तन, स्वाध्याय और ध्यानादि आत्मसाधना के लिए पूरा-पूरा समय निकाल लेते थे। शारीरिक प्रतिकूलताओं के बीच भी आप आत्महित के लिए सदा जाग्रत रहते थे। आप श्री के जीवन का एक ही महामंत्र था– 'आत्मश्रेय के लिए हमेशा जाग्रत रहो।'

शासन-प्रभावना

शासन के महान प्रभावक के रूप में आचार्यश्री सदियों तक भुलाए नहीं जा सकेंगे। आपश्री के वरद हाथों से हुई शासन प्रभावना का तो एक लम्बा इतिहास है। आपश्री के हाथों लगभग ६३ अञ्जनशलाकाएँ, ८० जिनमंदिरों की प्रतिष्ठा, अनेक जिनमंदिरों का जीर्णोद्धार, ३० से भी अधिक उपधानतप की आराधनाएँ आदि शासन-प्रभावना के अनेक कार्य सम्पन्न हुए। आप श्री के हाथों से अञ्जन हुई मूर्तियों की संख्या ९००० से भी अधिक है।

करुणा के सागर

आचार्यश्री की सच्ची पहचान यह नहीं कि उन्होंने कई जिनमंदिरों की स्थापना करवाई, उनकी सच्ची पहचान यह भी नहीं कि उन्होंने कई उपधान तप करवाए अथवा उपाश्रय आदि बनवाए, यह सब कुछ तो उनके कार्यों से उनकी पहचान है। उनकी वास्तविक पहचान तो उनके विरल व्यक्तित्व के परिचय में है।

सागर का सच्चा परिचय सागर के किनारे से नहीं मिल सकता, उसके लिए उनकी गहराई में उतरना पड़ता है। सागर के किनारे छीप अवश्य मिल सकती है, परन्तु मोती नहीं मिल सकते। उसी प्रकार व्यक्ति की पहचान भी बाहर से नहीं, उसके अंतर-जीवन से होनी चाहिए। परन्तु आचार्यश्री तो जैसे अंतर से थे वैसे ही बाहर से भी थे। उनका अंतर मन जितना निर्मल और करुणामय था उतना ही उनका बाहरी व्यवहार भी। वे अंदर और बाहर समान थे। हर व्यक्ति के प्रति उनका व्यवहार अंदर और बाहर से एक समान होता था।

विहार और चातुर्मास

अपने संयम जीवन के ४७ वर्षों के दौरान पूज्य आचार्यश्री ने गुजरात, राजस्थान, मध्यप्रदेश, बिहार, बंगाल और महाराष्ट्र आदि प्रान्तों में विचरण कर मानव के अंधकारमय जीवन को आलोकित करने का अथक पुरुषार्थ किया

था । उन्होंने अपने इस पुरुषार्थ में अपूर्व सफलता भी प्राप्त की थी । हजारों लोगों को व्यसन-मुक्त कर उन्हें शांतिपूर्ण एवं उज्ज्वल जीवन जीने का मार्गदर्शन दिया था । आचार्य-श्री ने अलग-अलग प्रान्तों में विचरण करने के साथ-साथ वहां के महानगरों में चातुर्मास भी किये थे, जिनमें बम्बई, पूना, कलकत्ता, अमदावाद, जामनगर एवं पाली आदि नगर प्रमुख है । आचार्यश्री महानगरों के साथ-साथ गाँवों में भी चातुर्मास करने के विशेष इच्छुक थे । उन्होंने कई छोटे गाँवों में भी चातुर्मास किये थे, जिनमें सादड़ी, राणी, लोदरा एवं अड़ोदरा आदि गाँवों के चातुर्मास उल्लेखनीय है ।

शिष्य-प्रशिष्य समुदाय

पूज्य आचार्यश्री के पावन उपदेशों एवं उनके उज्ज्वल जीवन से प्रभावित होकर कई महान् आत्माओं ने संयम ग्रहण किया । निम्नलिखित आठों साधु भगवन्तों ने पूज्य आचार्यश्री के पास ही उनके शिष्य के रूप में दीक्षा ग्रहण की थी ।

१. पूज्य पंन्यास श्री सूर्यसागरजी म. सा.
२. पूज्य आचार्यश्री भद्रबाहुसागरसूरीश्वरजी म. सा.
३. पूज्य प्रवर्तक श्री इन्द्रसागरजी म. सा.
४. पूज्य आचार्यश्री कल्याणसागरसूरीश्वरजी म. सा.
५. पूज्य मुनि श्री कंचनसागरजी म. सा.
६. पूज्य गणिवर्य श्री ज्ञानसागरजी म. सा.
७. पूज्य मुनि श्री नीतिसागरजी म. सा.
८. पूज्य मुनि श्री संयमसागरजी म. सा.

इनमें से पूज्य पंन्यास श्री सूर्यसागरजी म. सा. एवं पूज्य प्रवर्तक श्री इन्द्रसागरजी म. सा. का स्वर्गवास आचार्यश्री की विद्यमानता में ही हो गया था ।

पूज्य आचार्यश्री का 30 से भी अधिक शिष्यादि परिवार है । जिसमें पूज्य आचार्यश्री पद्मसागरसूरीश्वरजी म. सा. का नाम विशेष उल्लेखनीय है । इसके अतिरिक्त पूज्य आचार्यश्री के आज्ञानुवर्ती साधु-साध्वियों का भी विशाल समुदाय है ।

मृत्यु विजेता

वि. सं. २०४१, जेठ सुदि २ के दिन प्रातःकाल का प्रतिक्रमण पूर्णकर, प्रतिलेखन करने के लिए आचार्यश्री ने कायोत्सर्ग किया । बस, वह कायोत्सर्ग पूर्ण हो, उससे पहले आचार्यश्री की जीवन-यात्रा ही पूर्ण हो गयी । सब देखते ही रह गए और पूज्य आचार्यश्री ने सबके बीच से अनन्त विदाई ले ली । इससे पहले कि कायोत्सर्ग का विराम आता, पूज्य आचार्यश्री के जीवन का ही विराम आ गया ।

जिस चतुर्विंशति स्तव में 'समाहि वर मुत्तमं दिंतु' जैसे मंगल शब्दों द्वारा समाधिमय मृत्यु की प्रार्थना की जाती है, उसी चतुर्विंशति स्तव के कायोत्सर्ग में पूज्य आचार्यश्री ने समाधिमय मृत्यु प्राप्त की । जिस मृत्यु के विचार मात्र से व्यक्ति भयभीत हो जाता है, वही मृत्यु आचार्यश्री के चरणों में झुक गई । मानों ऐसा लगा कि पूज्य आचार्यश्री के सामने मृत्यु ही मर गई । पूज्य आचार्यश्री का अंतिम

संस्कार श्री महावीर जैन आराधना केन्द्र, कोबा के प्रांगण में किया गया।

ऐसे महान युगद्रष्टा, अपूर्व पुण्यनिधि पूज्य आचार्यश्री के जाने से व्यक्ति, समाज और समष्टि को बहुत बड़ा नुकसान पहुँचा है, जिसे आने वाले कई युगों तक पूरा नहीं किया जा सकता। कई सदियों के बाद ऐसे विरल और विराट व्यक्ति का समाज में अवतरण होता है, जो स्वयं के आत्मकल्याण के साथ-साथ हजारों-लाखों लोगों को आत्म-कल्याण के पथ पर आगे बढ़ने की प्रेरणा देकर उनके जीवन-पथ को आलोकित करते हैं।

जन्म लेना और मरना तो इस संसार का एक स्वभाव है। जन्म लेने वाला व्यक्ति एक न एक दिन अवश्य मरता है। परन्तु समाधिमय मृत्यु विरलों को ही प्राप्त होती है। पूज्य आचार्यश्री की समाधिमय मृत्यु उनकी उज्ज्वल एवं पवित्र जीवन-साधना का स्पष्ट चित्रण है। यह मौत वास्तव में मौत नहीं बल्कि एक महोत्सव था।

आचार्यश्री अपनी मृत्यु को शोक नहीं, बल्कि महोत्सव बनाकर गए। आपकी समग्र जीवन साधना मृत्यु के लिए थी। आचार्यश्री हर समय कहा करते थे कि 'मैं समाधि-मय मृत्यु प्राप्त करना चाहता हूँ।' वास्तव में यही हुआ, उन्होंने पूर्ण जागृति, शांति एवं प्रसन्नता के साथ मृत्यु प्राप्त की।

मृत्यु से पूर्व रात्रि में आपने अपने शिष्यों प्रशिष्यों आदि से मिच्छामि दुक्कड़ं देकर अपनी आत्मशुद्धि की और उनसे कहा कि–'मैं मृत्यु प्राप्त कर श्री सीमंधरस्वामी

परमात्मा के पास जाना चाहता हूँ, मुझे जीवन जीने का कोई मोह नहीं है और मरने का कोई डर नहीं है।' – यही आचार्यश्री के अंतिम उद्‌गार थे।

आपका पावन-पवित्र जीवन सबके लिए प्रेरणा का स्रोत था। हर व्यक्ति के लिए आप एक आदर्श थे।

आज पूज्य आचार्यश्री अपने बीच नहीं है, परन्तु उनकी उज्ज्वल जीवन-साधना हर समय लोगों के स्मृति पट पर अमर रहेगी। आप शांति एवं प्रसन्नता की मूर्ति एवं हम सब के राहबर थे।

परमात्मा के प्रति श्रद्धा तो आपमें कूट-कूट कर भरी हुई थी। आपके रोम-रोम में जिन शासन और परमात्मा का नाम, प्राणी मात्र के प्रति मैत्री भावना की अपूर्व गूंज थी। आप अपना अधिकतर समय परमात्मा के स्मरण एवं चिन्तन-मनन में व्यतीत करते थे। कभी आपको व्यर्थ में समय व्यतीत करते नहीं देखा गया। जिस प्रकार से समय का सुन्दर उपयोग आचार्यश्री ने अपने जीवन में किया, शायद ही वैसा इस काल में कोई कर सकेगा। आचार्यश्री सरल-सौम्य स्वभाव की एक जीवित-जाग्रत प्रतिमा थे।

आचार्यश्री का जीवन एवं निर्मल चारित्र अपने आप में अनूठा, अनोखा, अद्वितीय, अनुपम एवं एक आदर्श था, जो युगों-युगों तक श्रद्धालुओं के जीवन-पथ को आलोकित कर, उन्हें उज्ज्वल जीवन जीने की प्रेरणा देता रहेगा।

अंत में पूज्य आचार्यश्री के परम-पावन चरण-कमलों में भावभरी कोटिशः वन्दना ..... !

● ●

जगत् में जो भी मूल्यवान है — जीवन, आत्मा, परमात्मा — उसका अविष्कार स्वयं ही करना होता है। उसे किसी और से पाने का कोई उपाय नहीं है।

●

मोक्ष जीवन का वह सम्पूर्ण विकसित रूप है, जिसे प्राप्त करने के बाद उन जन्म — मरण की उलझनों का अन्त सदा के लिए हो जाता है, जो संसार में रहने पर हम से जुड़ी हुई हैं।

●

हमारे प्रेरणादायी प्रकाशन :

- डाक-शिक्षण (मासिक पत्रिका)
  आजीवन सदस्यता शुल्क (हिन्दी) 101 रु.
- आलोक के आंगन में (सूक्तियां) (हिन्दी) 1-25 रु.
- गच्छाधिपति पू. आ श्री कैलाससागर-
  सूरीश्वरजी म. सा. जीवन-यात्रा :
  एक परिचय (हिन्दी/गुजराती) 2-50 रु.
- गच्छाधिपति पू. आ. श्री कैलाससागर-
  सूरीश्वरजी म. सा. के स्वाध्याय-सूत्र
  (आगमोक्त सूक्तियां) (हिन्दी) 2-50 रु.

शीघ्र ही प्रकाशमान :

- सेठ मफतलाल (दृष्टांत)
- गच्छाधिपति पू. आ. श्री कैलाससागर-
  सूरीश्वरजी म. सा. जीवन-यात्रा : एक परिचय (अंग्रेजी)
- गच्छाधिपति पू. आ. श्री कैलाससागरसूरीश्वरजी
  म. सा. के स्वाध्याय-सूत्र
  (आगमोक्त सूक्तियां) (गुजराती)

● पुस्तक प्राप्तिस्थान :

श्री महावीर जैन आराधना केन्द्र
C/o मिलन अजितभाई सुतरिया
24, कृष्णवन सोसायटी,
अंकुर रोड, नारणपुरा,
अहमदाबाद – 380013.

●

● प्रस्तुत पुस्तिका के सम्बन्ध में आपके विचार सादर आमंत्रित है उन्हें उपरोक्त पते पर भेजें ।